

## श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 14: अस्तित्व का महान् वन

22 September 2026



### पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



देहधारी जीव, लाभ के लिए भटकता एक अकेला वणिक्, सांसारिक अस्तित्व के अंधकारमय और मार्गहीन वन में प्रवेश करता है, जहाँ छह इन्द्रियाँ लुटेरों के समान घात लगाए बैठी हैं — वही महान् रूपक जिसे श्रीशुक राजा परीक्षित के लिए खोलते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

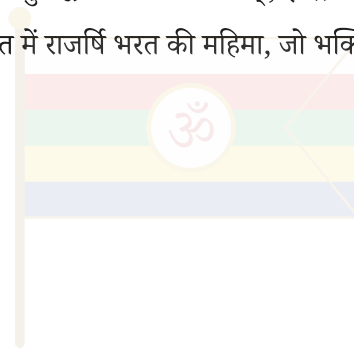
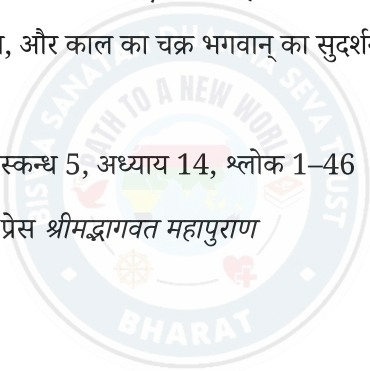
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में महान् ऋषि जड़ भरत ने राजा रूहण के लिए एक विचित्र और सुन्दर चित्र खींचा था — समूचा सांसारिक जीवन एक ऐसे वणिक्-दल के रूप में दिखाया गया जो एक विशाल वन में भटक गया हो। अब श्रीशुक राजा परीक्षित के लिए उस चित्र का पर्दा उठाते हैं, हमें दिखाते

हुए कि उस वन की प्रत्येक वस्तु का सचमुच क्या अर्थ है। यह समस्त भागवत के सबसे मर्मभेदी प्रसंगों में से एक है — एक ऐसा दर्पण जिसमें हम चौंककर अपनी ही बेचैन यात्रा को पहचान लेते हैं — और यह निराशा में नहीं, अपितु महिमा में समाप्त होता है, राजर्षि भरत के देदीप्यमान उदाहरण के साथ, जो अपना सम्पूर्ण हृदय भगवान् को देकर उस वन से मुक्त होकर निकल गए।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 14 (चतुर्दश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: सांसारिक अस्तित्व का महान् वन
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित के लिए जड़ भरत के रूपक का अर्थ खोलते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: श्रीशुक का उपदेश, जो जड़ भरत द्वारा राजा रूहण को दिए गए सांसारिक अस्तित्व के वन के रूपक को प्रकाशित करता है
- केन्द्रीय विषय: सांसारिक जीवन के एक भयावह वन के रूपक का बिंदु-दर-बिंदु उद्घाटन — जीव वणिक्, इन्द्रियाँ लुटेरे, परिवार भेड़िये और सियार, धन मृगतृष्णा, और काल का चक्र भगवान् का सुदर्शन — और अन्त में राजर्षि भरत की महिमा, जो भक्ति से उस वन के पार चले गए
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 1-46
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



## पिछले अध्याय से

तेरहवें अध्याय में ऋषि जड़ भरत ने राजा रूहण के प्रश्नों का उत्तर एक महान् रूपक से दिया, हमारे समूचे सांसारिक अस्तित्व की तुलना एक ऐसे वन से करते हुए जिसमें वणिकों का एक दल भटकता है, चारों ओर से घिरा हुआ और अपना मार्ग खोता हुआ। उस ऋषि के शब्दों से राजा के सन्देह कोमलता से शान्त हो गए। अब उस वन की प्रत्येक छवि का गहरा अर्थ हमारे लिए खोला जाता है, ताकि जो रूपक में दिया गया था वह सत्य रूप में समझा जा सके।

## जीव महान् वन में प्रवेश करता है

श्रीशुक उन छह का नाम लेकर आरम्भ करते हैं जो जीव को पथभ्रष्ट करते हैं — पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और उनका स्वामी मन। क्योंकि देहधारी जीव देह को ही अपनी आत्मा मान लेता है, ये छह वह द्वार बन जाते हैं जिनसे होकर वह जन्म-जन्मान्तर, संयोग और वियोग, सुख और दुःख के अनादि चक्र में प्रवेश करता है। माया से — भगवान् की अपनी वह मोहिनी शक्ति जो सर्वशक्तिमान् विष्णु के अधीन ही कार्य करती है — प्रेरित होकर, जीवों का समूह लाभ के लोभी वणिकों के दल के समान निकल पड़ता है और सांसारिक अस्तित्व के वन में प्रवेश करता है — एक ऐसा

स्थान जो श्मशान के समान अशुभ है, जहाँ प्रत्येक केवल देह से किए कर्मों का फल ही भोगता है। और यद्यपि उनके प्रयास सदा विफल होते हैं, फिर भी वे उस एकमात्र मार्ग को नहीं पाते जो उनके शोक का अन्त कर दे — गुरु में विद्यमान स्वयं श्रीहरि के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का मार्ग, जिसके द्वारा जीव अन्ततः भगवान् के ही चरणों तक पहुँचता है।

स होवाच

स एष देहात्ममानिनां ... द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण ... जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सारथोऽर्थपरः ... संसाराटव्यां गतो नाद्यापि ...  
हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे ॥ १ ॥

*sa hovāca / sa eṣa dehātma-māninām ... dvāra-bhūtena ṣaḍ-indriya-vargeṇa ... jīva-loka 'yaṁ yathā vaṇik-sārtho 'rtha-paraḥ ... saṁsārāṭavyām gato nādyāpi ... hari-guru-caraṇāravinda-madhukarānupadavīm avarundhe*

अर्थ: उन्होंने कहा: क्योंकि देहधारी जीव देह को ही आत्मा मानते हैं, छह इन्द्रियाँ उनके लिए वह द्वार बन जाती हैं जिससे वे शुभ, अशुभ और मिश्रित कर्मों से रचित नाना देहों में होकर जन्म-मृत्यु के अनादि चक्र में प्रवेश करते हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु की माया से प्रेरित यह जीव-समूह, धन के लोभी वणिकों के दल के समान, श्मशान-सा अशुभ सांसारिक अस्तित्व के वन में भटक जाता है — और आज भी उन भक्तों के शोक-नाशक मार्ग को नहीं पाता, जो मधुमक्खी के कमल पर मँडराने के समान, गुरु के रूप में श्रीहरि के चरणों की शरण लेते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 1)

## छह लुटेरे और वह परिवार जो लूटता है

श्रीशुक आगे हमें स्पष्ट रूप से बताते हैं कि वे छह वास्तव में क्या हैं। यद्यपि वे इन्द्रिय के सम्माननीय नाम से पुकारे जाते हैं, अपने कर्मों में वे लुटेरों के अतिरिक्त कुछ नहीं। जो भी धन कोई मनुष्य बड़े परिश्रम से एकत्र करता है, वह केवल तभी सार्थक है जब वह धर्म पर व्यय हो — और सच्चा धर्म, विवेकी घोषित करते हैं, स्वयं परम पुरुष की आराधना है, वही एक वस्तु जो आत्मा को परलोक के सुख की ओर ले जाती है। किन्तु जिसकी बुद्धि विकृत और जिसका मन अनियन्त्रित है — अयोग्य नायक के नेतृत्व में चलते वणिकों के दल के समान — उसमें इन्द्रियाँ धर्म के लिए नियत उस धन को ही छीन लेती हैं और देखने, स्पर्श करने, सुनने, चखने तथा सूँघने में, घर के भोगों में उसे उड़ा देती हैं।

यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते । ... तद्धर्म्यं धनं ... कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य विलुम्पन्ति ॥ २ ॥

*yasyām u ha vā ete ṣaḍ-indriya-nāmāṇaḥ karmaṇā dasyava eva te ... tad-dharmyaṁ dhanam ... kunāthasyājītātmano yathā sārthasya vilumpanti*

अर्थ: उस वन में ये छह, जो इन्द्रिय नाम धारण करते हैं, अपने कर्म से लुटेरों के अतिरिक्त कुछ नहीं। जैसे डाकू अयोग्य नायक के नेतृत्व वाले काफ़िले को लूट लेते हैं, वैसे ही अनियन्त्रित मन वाले में वे उस धन को ही लूट लेते हैं जो धर्म पर व्यय होने योग्य था, घर के विषय-भोगों के माध्यम से। (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 2)

और लुटेरे केवल भीतर ही नहीं। उसी वन में, श्रीशुक कहते हैं, मनुष्य के अपने परिवार के सदस्य — नाम में पत्नी और सन्तान, किन्तु कर्म में भेड़िये और सियार — उसकी आँखों के सामने ही वह धन छीन ले जाते हैं जिसे कंजूस गृहस्थ इतनी ईर्ष्या से रखता है, जैसे गड़रियों द्वारा ले जाया गया मेमना असहाय हो। और गृहस्थ का जीवन स्वयं कर्म के बीज बोने का एक खेत है: कितनी ही बार जोता जाए, बोने के समय वह ताज़ी इच्छाओं के खरपतवार से फिर घना उग आता है, क्योंकि वह तो लालसाओं का भण्डार ही है, जहाँ कर्म कभी समाप्त नहीं होता।



छह इन्द्रियों, अपने कर्मों से लुटेरे, वन में जीव पर घात लगाती हैं और भगवान् की आराधना के लिए नियत धन को हर ले जाती हैं, जबकि परिवार के सदस्य भेड़ियों और सियारों के समान बर्ताव करते हैं (श्लोक 2-4)।

## मृगतृष्णा, स्वर्ण, और मोह का बवण्डर

श्रीशुक अब हमें उस मार्ग पर और गहरे ले जाते हैं, जहाँ भटकते जीव का थोड़ा-सा संचय मच्छरों और मक्खियों, टिट्टियों और पक्षियों, चोरों और चूहों द्वारा कुतर लिया जाता है — संसार की असंख्य छोटी माँगों द्वारा। अज्ञान, इच्छा और कर्म से आच्छादित मन से, वह इस क्षणभंगुर संसार को — आकाश में कल्पित नगर के समान असत्य — ठोस और स्थायी मान बैठता है। वह इन्द्रियों के मृगतृष्णा-सुखों के पीछे दौड़ता है, खाने और पीने तथा देह की लालसाओं का स्नेहपूर्वक दास बना हुआ। जैसे अग्नि के लिए पगलाया मनुष्य छलावे के पीछे दौड़े, वैसे ही वह स्वर्ण के पीछे दौड़ता है — जिसे भागवत अग्नि का मल और समस्त पापों का घर कहता है — उसका मन रजोगुण से रँगा हुआ, जो स्वर्ण के ही रंग का है।

कभी, किसी मोहिनी स्त्री की गोद में बैठा, जो बवण्डर के समान उसकी आँखों में धूल झोंक देती है, और रजोगुण के अंधकार में डूबा हुआ, वह सज्जनों के मार्ग को पूर्णतया छोड़ देता है और उन दिशा-रक्षक देवताओं को भी नहीं देख पाता जो उसके सब कर्मों के साक्षी हैं। एक दुर्लभ स्पष्ट क्षण में भी, जब विषयों की खोखलापन उस पर कौंध जाती है, देह से उसका हठी लगाव उसकी बुद्धि हर लेता है, और वह फिर से उन्हीं मृगतृष्णा-सी वस्तुओं के पीछे लौट पड़ता है। और चारों ओर उसके कान और हृदय धमकियों से पीड़ित होते हैं — उसके सामने उल्लुओं की हूक के समान और पीछे झींगुरों की तीखी आवाज़ के समान।



वन के मार्ग पर मोहित, जीव इन्द्रिय-सुख की मृगतृष्णा और स्वर्ण की चमक के पीछे दौड़ता है, क्षणभंगुर संसार को कुछ सत्य और स्थायी समझते हुए (श्लोक 5-11)।

## मार्ग के अनन्त भार

मार्ग की यह थकाऊ कथा चलती रहती है, और श्रीशुक उसके कष्ट में से कुछ भी नहीं छोड़ते। जब उसका पूर्व-पुण्य का संचय चुक जाता है और वह साँस लेते हुए भी मृतप्राय हो जाता है, तब भटकता जीव ऐसे लोगों की शरण लेता है जिनका धन किसी के काम नहीं आता — विषैले वृक्षों और दूषित जल के कुओं के समान बंजर। कुसंगति में पड़कर वह किसी नास्तिक मत को अपना सकता है और, सूखी नदी की पथरीली तलहटी में गिरने के समान, इहलोक और परलोक दोनों के दुःख में जा गिरता है। भूख से प्रेरित होकर वह अपनों पर भी टूट पड़ता है; समस्त सुख से रहित घर पहुँचकर वह शोक की दावाग्नि से झुलस उठता है; वह निद्रा के अजगर में जकड़ा जाता है, निर्जन वन में शव के समान पड़ा रहता है, और अंधे के समान किसी ढके हुए कुएँ में जा गिरता है।

जो कुछ वह पकड़ता है, वह उसके पास कभी नहीं ठहरता — एक उसे छीन ले जाता है, और उससे दूसरा। बाहर की शीत वायु और भीतर के ज्वर तथा चिन्ता उसे ऐसी व्यथा में डुबो देते हैं जिसे वह झटक नहीं पाता। इस मार्ग पर, श्रीशुक हमें बताते हैं, हर्ष और शोक, राग और द्वेष, भय और अभिमान, मोह और शोक, लोभ और ईर्ष्या, भूख और प्यास, रोग तथा वृद्धावस्था और मृत्यु पड़े हैं — और सबसे मधुर तथा सबसे संकटपूर्ण, वह स्त्री जो भगवान् की अपनी मोहिनी शक्ति है, जिसकी लता-सी भुजाओं में, अपने चारों ओर एकत्रित सन्तानों के स्नेहपूर्ण शब्दों और चितवनों से लुभाया हुआ, अनियन्त्रित मन वाला मनुष्य अंधकार में सिर के बल कूद पड़ता है।



भारग्रस्त और चारों ओर से घिरा, भटकता जीव काँटों के वन में संघर्ष करता आगे बढ़ता है — निद्रा में फँसा, अपने संचय से लूटा गया, और मोह की लता-सी भुजाओं से बँधा हुआ (श्लोक 12-28)।

## काल का सुदर्शन और विस्मृत भगवान्

फिर आती है सबसे विस्मयकारी छवि। समूचे वन के ऊपर सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र घूमता है, सदा-जागृत काल के रूप में प्रकट — एक क्षण के सूक्ष्मतम परमाणु से लेकर उन दो परार्धों तक जो स्वयं ब्रह्मा की आयु मापते हैं। वह चक्र प्रत्येक प्राणी को हर ले जाता है, ब्रह्मा से लेकर तृण के तुच्छ गुच्छे तक, जबकि सब असहाय देखते रह जाते हैं। भटकते जीव का हृदय उसके घूमने से भय से भर उठता है; और फिर भी — यही तो उसका महान् दुःख है — वह उसी भगवान् की उपेक्षा करता है जो उस काल-चक्र को अपने अस्त्र के रूप में धारण करते हैं, और इसके बदले नास्तिकों के मिथ्या देवताओं की ओर दौड़ता है, ऐसे देव जो चील और गिद्धों, बगुलों और बटेरों से बेहतर नहीं, जो उसे मृत्यु से उतना भी नहीं बचा सकते जितना एक छोटा पक्षी सिंह का सामना कर सके।

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात् ... आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानाम ... वित्रस्तहृदय ... यज्ञपुरुषमनादृत्य ... साङ्केत्येनाभिधत्ते ॥

२९ ॥

*kadācid īśvarasya bhagavato viṣṇoś cakrāt ... ābrahma-tṛṇa-stambādīnāṃ bhūtānām ... vitrasta-hṛdaya ... yajña-puruṣam anādṛtya ... sāṅketyenābhidhatte*

अर्थ: सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु के सुदर्शन से भयभीत हृदय — जो काल के रूप में प्रकट होकर ब्रह्मा से लेकर तृण तक समस्त प्राणियों को उनके देखते-देखते हर ले जाता है — फिर भी वह उसी भगवान् की उपेक्षा करता है, यज्ञ के अधिष्ठाता जो काल-चक्र को धारण करते हैं, और इसके बदले नास्तिकों के देवताओं की शरण में चला जाता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 29)

ऐसी मिथ्या शरणों से छला जाकर, श्रीशुक कहते हैं, भटकता जीव एक जीवन-क्रम से दूसरे में बहता रहता है, अपनी मृत्यु के क्षण को भी भूलते हुए, मृत्यु रूपी हाथी के निरन्तर भय में जीते हुए, पुराने संस्कारों के अनुसार बन्धन बनाते और तोड़ते हुए। और यदि कोई सहयात्री मार्ग में गिर पड़े, तो शेष उसे वहीं छोड़ आगे बढ़ जाते हैं, नवजात शिशु को साथ लिए, बारी-बारी से रोते और झगड़ते और गाते हुए। पुण्यात्माओं को छोड़,

यह समूचा दल एक बार भी उस स्रोत की ओर नहीं लौटता जहाँ से मार्ग आरम्भ हुआ था — स्वयं भगवान्, जिन्हें विवेकी मार्ग का आदि और अन्त दोनों कहते हैं। वे भक्ति की प्रेममयी साधना को नहीं अपनाते; चारों दिशाओं को जीतने वाले प्रतापी राजा भी भूमि के एक टुकड़े के लिए युद्ध में मरना अधिक पसन्द करेंगे। ताज़े कर्म की लता से चिपके, एक कष्ट से बचकर दूसरे में गिरते हुए, वे बार-बार जन्म के चक्र में लौट आते हैं।

यहाँ यह विचार करना उपयोगी है कि श्रीशुक ठीक यही चित्र क्यों चुनते हैं। इस वन में कुछ भी विचित्र या दुर्लभ नहीं है — यह पत्नी और सन्तान हैं, एक जीविका है, एक घर है, नींद है, थोड़ा-सा स्वर्ण है, एक सन्ध्या का क्रोध है। इस उपदेश की असली धार यही है कि संसार को किसी जीव को बाँधने के लिए बड़ी दुष्टता की आवश्यकता नहीं — एक सम्मानित जीवन के साधारण सुख ही जीव को किसी अपराधी के समान भटका हुआ रखने के लिए पर्याप्त हैं, जब तक वह देह को ही आत्मा मानता रहे (श्लोक 1)। और न ही इसका उपाय केवल आत्म-प्रयास है: जो जीव बार-बार यह चख भी ले कि जिसके पीछे वह दौड़ रहा है वह व्यर्थ है, वह इस अनुभव मात्र से नहीं बदलता, क्योंकि स्मृति क्षीण हो जाती है और वह फिर उसी मृगतृष्णा के पीछे लौट पड़ता है (श्लोक 10)। वन की पकड़ केवल वहीं ढीली होती है जहाँ कृपा संचारित होती है — सच्चे गुरु के माध्यम से, जिनमें श्रीहरि स्वयं विद्यमान हैं — न कि चतुराई से, न ही अपने बल पर किए गए त्याग से (श्लोक 41)।



भगवान् विष्णु का सुदर्शन, काल-चक्र के रूप में घूमता हुआ, ब्रह्मा से लेकर तृण तक प्रत्येक प्राणी को हर ले जाता है — फिर भी भयभीत जीव उसे धारण करने वाले भगवान् से मुख मोड़े रहता है (श्लोक 29-41)।

## राजर्षि भरत की महिमा

वन का समूचा अंधकारमय विस्तार दिखा चुकने पर, श्रीशुक अन्ततः उसकी ओर मुड़ते हैं जो उसमें से निकलकर स्वच्छन्द चले गए, और उनका स्वर स्तुति का गीत बन जाता है। मुनि गाते हैं कि कोई राजा मन से भी उस उच्चात्मा राजर्षि भरत, भगवान् ऋषभ के पुत्र, के मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता — उतना ही असम्भव जितना कि कोई मक्खी गरुड़ की गति की बराबरी की आशा करे। अभी युवा ही थे कि, यशस्वी भगवान् के लिए उमड़ती लालसा से हृदय भरा हुआ, भरत ने पत्नी और पुत्र, स्वजन और राज्य — जिन्हें औरों के लिए त्यागना इतना कठिन है — इतने हलके से त्याग दिए जैसे कोई मल को फेंक देता है।

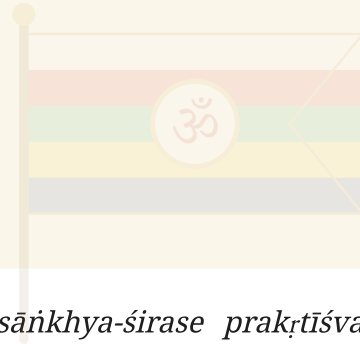
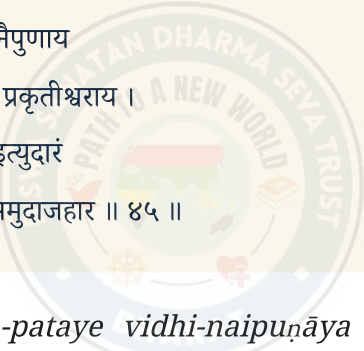
यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्  
प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।  
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट-  
सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४४ ॥

*yo dustyajān kṣiti-suta-svajanārtha-dārān prārthyāṁ śriyaṁ sura-varaiḥ sadayāvalokām  
naicchan nṛpas tad-ucitaṁ mahatām madhudviṭ- sevānurakta-manasām abhavo 'pi phalguḥ*

अर्थ: उस राजा ने पृथ्वी, पुत्र, स्वजन, धन या पत्नी की — जिन्हें त्यागना इतना कठिन है — कामना नहीं की; न ही उन श्री (लक्ष्मी) की, जिनकी बड़े-बड़े देव भी अभिलाषा करते हैं, यद्यपि उन्होंने उस पर कृपादृष्टि डाली। और यह उचित ही था; क्योंकि जिन उच्चात्माओं का मन मधु-दैत्य के संहारक भगवान् विष्णु की सेवा में लीन है, उनके लिए मुक्ति भी तुच्छ है। (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 44)

उनका समर्पण इतना पूर्ण था कि अपने अन्तिम जन्म में भी, मृग की देह धारण किए हुए, वे अपने भगवान् को नहीं भूले। अपने समस्त अस्तित्व से उन्होंने वह पशु-रूप त्यागने से पहले ही एक अन्तिम, देदीप्यमान नमस्कार-प्रार्थना अर्पित की।

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय  
योगाय साङ्ख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ।  
नारायणाय हरये नम इत्युदारं  
हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥ ४५ ॥



*yajñāya dharma-pataye vidhi-naipuṇāya yogāya sāṅkhya-śirase prakṛtiśvarāya nārāyaṇāya  
haraye nama ity udāraṁ hāsyān mṛgatvam api yaḥ samudājahāra*

अर्थ: “भगवान् नारायण, श्रीहरि को नमस्कार — जो स्वयं यज्ञ और धर्म के रक्षक हैं, समस्त शास्त्र-विधि के ज्ञाता, योग के मूर्तरूप, सांख्य-ज्ञान के शिरोमणि, प्रकृति के स्वामी और प्रत्येक जीव के शासक!” — इस प्रकार, उदारता और स्पष्टता से, भरत ने प्रार्थना की, तब भी जब वे मृग की देह त्यागने ही वाले थे। (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 45)

और श्रीशुक समूचे उपदेश को उन लोगों के लिए एक वचन से मुहरबन्द करते हैं जो इस पावन कथा को हृदय से धारण करते हैं। जो कोई राजर्षि भरत की कथा को सुनता, पढ़ता या उसमें आनन्द लेता है — एक ऐसी कथा जो भगवान् के भक्तों द्वारा प्रशंसित है, और जो शुभ भाग्य, दीर्घ आयु, धन, यश, स्वर्गीय सुख और अन्तिम मुक्ति प्रदान करती है — वह स्वयं ही प्रत्येक अभीष्ट आशीर्वाद पा लेता है, और किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं रहती।

य इदं भागवतसंभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं ... वानुशृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न  
काञ्चन परत इति ॥ ४६ ॥

*ya idam bhāgavata-sabhājītāvadāta-guṇa-karmaṇo rājarṣer bharatasyānucaritam ... vānuśṛṇoty ākhyāsyaty abhinandati ca sarvā evāśīṣa ātmana āśāste na kāñcana parata iti*

अर्थ: जो कोई राजर्षि भरत की इस कथा को — जिनके निर्मल गुण भगवान् के भक्तों द्वारा प्रशंसित हैं — सुनता, पढ़ता या उसमें आनन्द लेता है, वह स्वयं ही अपने समस्त अभीष्ट आशीर्वाद पा लेता है, और किसी अन्य से कुछ नहीं माँगता। (स्कन्ध 5, अध्याय 14, श्लोक 46)



राजर्षि भरत, जिन्होंने सब कुछ त्यागकर अपना हृदय पूर्णतया नारायण को दे दिया, उस एकमात्र आत्मा के रूप में देदीप्यमान हैं जो महान् वन से मुक्त होकर निकल गए — उनकी अन्तिम प्रार्थना भी भगवान् को अर्पित (श्लोक 42-46)।

## इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

सांसारिक जीवन एक ऐसा वन है जिसमें हम पहले से ही भटक रहे हैं। यह रूपक किसी दूर के यात्री के विषय में नहीं है; यह हमारे विषय में है। जिस क्षण आत्मा देह को अपना स्वरूप मान बैठती है, वह वन में पग रख देती है, और कथा की प्रत्येक छवि — लुटेरे, मृगतृष्णा, काँटे — एक ऐसे जीवन से ली गई है जिसे हम जानते हैं। इसे पहचानना ही निकलने की दिशा में पहला पग है।

जब मन अनियन्त्रित हो तो इन्द्रियाँ लुटेरे बन जाती हैं। सम्माननीय नाम से पुकारी जाने पर भी, इन्द्रियाँ अपने लोभ पर छोड़ दी जाएँ तो जीवन के समूचे कोश को लूट लेती हैं। उनका उचित उपयोग धर्म की सेवा है — परम पुरुष की आराधना — और धन स्वयं तभी सार्थक है जब वह उसी ओर मोड़ा जाए।

काल भगवान् का अपना सुदर्शन है। वन में कुछ भी काल के घूमते चक्र से नहीं बचता, ब्रह्मा से लेकर तृण तक। ठीक से देखा जाए तो यह भय नहीं, अपितु एक आह्वान है: वही शक्ति जो सब कुछ हर ले जाती है, भगवान् की है, और जो आत्मा उनकी शरण लेती है उसे कुछ भी भय नहीं रहता।

मिथ्या शरणें बचा नहीं सकतीं। क्षणभंगुर और असमर्थ की ओर दौड़ना केवल भटकन को गहरा करता है। एक ही शरण है जो वन का अन्त करती है, और वह है श्रीहरि के चरणकमल।

भक्ति ही निकलने का एकमात्र मार्ग है। भरत समूचे वन के पार बल या विजय से नहीं, अपितु अपना हृदय भगवान् को देकर गए, मुक्ति को भी उनकी सेवा के आगे तुच्छ मानते हुए। उनकी कथा दिखाती है कि निकलने का मार्ग हर उस आत्मा के लिए खुला है जो भगवान् को सबसे ऊपर प्रेम करने को तैयार है।

## एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह कितना भयकारी है कि यह वन हमारे अपने जीवन में कितनी सटीक बैठता है। हमने भी स्वर्ण की चमक के पीछे दौड़ लगाई और उसे राख होते देखा; हमने भी क्षणभंगुर संसार को कुछ ठोस माना, और शोक से चौंकर जागे; हमने भी चिन्ता और अभाव के उन छोटे लुटेरों को जाना जो हमारे दिनों को कुतरते रहते हैं। भागवत यह चित्र हमें निराश करने के लिए नहीं खींचता, अपितु हमें ईमानदार बनाने के लिए — ताकि हम अन्ततः देख सकें कि वन में हमारा सारा हड़बड़ा-कर संचय एक बार भी हमें घर नहीं ला सका। और फिर, जब अंधकार पूर्ण-सा लगता है, वह एक दीपक उठा देता है: भरत की आकृति, मुक्त चलती हुई। वे हमसे अधिक बलवान् न थे, न ही चतुराई से बच निकले। उन्होंने बस भगवान् को वन से अधिक प्रेम किया, और वही एक, सम्पूर्ण-हृदय का मुड़ना पर्याप्त था। मृग के रूप में उनकी अन्तिम साँस एक प्रार्थना थी। यही वह शान्त वचन है जो हम में से हर एक को दिया गया है — कि चाहे हम कितने ही गहरे भटके हों, घर का मार्ग उसी क्षण खुल जाता है जब हृदय, प्रेम से, नारायण की ओर मुड़ता है। वन सत्य है; किन्तु निकलने का मार्ग भी सत्य है, और वह जितना हम सोचते हैं उससे कहीं निकट है।

## एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, अपने ही वन में किसी एक “मृगतृष्णा” को पहचानिए — कोई एक वस्तु जिसके पीछे आप ऐसे दौड़ रहे हैं मानो आपका सुख उसी पर निर्भर हो — और एक क्षण के लिए उसे कोमलता से नीचे रख दीजिए। उसके स्थान पर एक छोटा कर्म कीजिए जो आपके धन, समय या ध्यान को भगवान् की ओर मोड़े: उनके नाम पर एक सिक्का या एक भोजन अर्पित कीजिए, किसी प्राणी से एक कोमल शब्द कहिए, या बस रुककर, अपने सम्पूर्ण हृदय से कहिए, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर, राजर्षि भरत का स्मरण करते हुए, उनकी कथा की कुछ पंक्तियाँ भी पढ़िए या दोहराइए, ताकि उसका आशीर्वाद आप में चुपचाप जड़ पकड़ ले। इस प्रकार आप, वन के बीच रहते हुए भी, उस एकमात्र मार्ग पर चलना आरम्भ कर देते हैं जो उससे बाहर ले जाता है।

## उपसंहार

पंचम स्कन्ध का चौदहवाँ अध्याय श्रीशुक द्वारा सांसारिक अस्तित्व के वन का देदीप्यमान उद्घाटन है। बिंदु-दर-बिंदु वे हमें दिखाते हैं — जीव वृक्षों के बीच खोया एक वणिक्, इन्द्रियाँ लुटेरे, परिवार भेड़िये और सियार, धन मृगतृष्णा और स्वर्ण अग्नि का मल, निद्रा एक सर्प और मोह एक स्त्री का आलिंगन — और, इन सबके ऊपर, काल का चक्र भगवान् विष्णु के सुदर्शन के रूप में घूमता हुआ, ब्रह्मा और तृण दोनों को समान रूप से हर ले जाता हुआ। यह भटकते जीवन का एक निर्मम दर्पण है, जिसमें प्रत्येक आत्मा अपनी ही बेचैन यात्रा को पहचान सकती है। फिर भी यह उपदेश हमें अंधकार में नहीं छोड़ता। यह राजर्षि भरत की स्तुति के गीत में समाप्त होता है, जिन्होंने वह सब त्याग दिया जिससे और लोग चिपके रहते हैं, मुक्ति को भी भगवान् की सेवा के आगे तुच्छ माना, और मृग की देह में भी अपनी अन्तिम प्रार्थना नारायण को अर्पित की। यहाँ एक ही जीवन में समूची शिक्षा है: वन सत्य है, किन्तु भक्ति वह मार्ग है जो उससे स्वच्छन्द बाहर, श्रीहरि के चरणों तक, घर ले जाता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

## संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, चतुर्दश अध्याय, “Jadabharata elucidated the meaning of the allegory।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-14-the-great-forest-of-material-existence-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-14-the-great-forest-of-material-existence-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट